## पञ्चमं व्याप्तिलक्षणम्

## पञ्चमलक्षणहिन्दीव्याख्याकारः

डॉ॰ प्रभाकरप्रसादः

### चिन्तामणि

## साध्यवदन्यावृत्तित्वं वा, केवलान्वयिन्यभावात्।

### माथुरी

**साध्यवदन्येति। अत्रापि प्रथमलक्षणोक्तरीत्या हेतौ साध्यवदन्यवृत्तित्वाभाव इत्यर्थः।**

श्री गङ्गेशोपाध्यायजी "साध्याभाववदवृत्तित्वम्", "साध्यवद्भिन्न-साध्याभाववदवृत्तित्वम्", "साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावासामानाधिकरण्यम्", "सकलसाध्याभाववन्निष्ठाभावप्रतियोगित्वम्", इस प्रकार व्याप्ति के चार लक्षणों के निरूपण के बाद पञ्चम या अन्तिम लक्षण का निरूपण कर रहे हैं–"साध्यवदन्यावृत्तित्वम्"[१] अर्थात् साध्याधिकरण (साध्यवत्) से भिन्न निरूपित अवृत्तिता जो हेतु निष्ठ है उसी को व्याप्ति कहते हैं। जैसे

१. मूल में श्रीचिन्तामणिकारने "साध्यवदन्यावृत्तित्वम्" अर्थात् साध्याधिकरण से भिन्न निरूपित वृत्तित्वाभाव को ही व्याप्ति कहा है, इससे साध्यवत्वाव-च्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभावनिरूपितवृत्तित्वाभाव अर्थ कैसे निकलता है? इस प्रश्न का समाधान दीधिति ग्रन्थ में इस प्रकार है–"अत्रान्योन्याभावस्य साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वं व्युत्पत्तिबललभ्यम्। न हि भवति नीलो घटो घटान्यः" आशय यह है कि– अन्यपद के सामर्थ्य से ही "साध्यवदन्य" इस लक्षणघटकवाक्य का अर्थ केवल एक साध्याधिकरण से भिन्न इतने मात्र नहीं है, किन्तु साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक भेद युक्त है। क्योंकि व्यवहार में सब जगह "घटान्यः" अर्थात् घट से भिन्न कहने से पट (कपड़े) आदि का ही बोध होता है, न कि नील घट आदि का बोध होता है। "घटान्यः" यहाँ एक घट

"पर्वतो वह्निमान्" "पर्वत वह्निवाला है" इस अनुमान में साध्य वह्नि (आग) है, साध्यवत् अर्थात् साध्याधिकरण महानस (पाकशाला) आदि हैं उनसे भिन्न जलाशय आदि है, उनमें मीन शैवल आदि विद्यमान हैं अतः तन्निरूपित वृत्तिता मीन आदि में है, अवृत्तिता (प्रकृत अनुमान के) हेतुभूत धूम में हैं, उसी को अर्थात् साध्याधिकरणभिन्ननिरूपित हेतु निष्ठ अवृत्तिता को व्याप्ति कहते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ है कि वह्निमत् से भिन्न जलाशय आदि में अवृत्ति होने से धूम वह्नि का व्याप्य है तथा धूमनिष्ठवह्निमद्भिन्नावृत्तित्व धर्म ही व्याप्ति है। इसकी व्याख्या में मथुरानाथ जी कहते हैं कि– यहाँ भी प्रथम लक्षण के समान हेतुनिष्ठ साध्यवदन्यनिरूपित वृत्तित्वाभाव विवक्षित है। अर्थात् जिस हेतु में जिस साध्य के अधिकरण से भिन्न अधिकरण निरूपित वृत्तित्व का अभाव होगा उस हेतु में उस साध्य की व्याप्ति होगी। उदाहरणार्थ प्रसिद्ध "वह्निमान् धूमात्" इस स्थान में धूम हेतु में साध्याधिकरण महानस आदि से अन्य जलाशय आदि निरूपित वृत्तित्व का अभाव होने से धूम में वह्नि व्याप्ति लक्षण का समन्वय होता है। प्रसिद्ध असद्धेतु "धूमवान् वह्नेः" इस स्थल में वह्नि हेतु में साध्य धूम के अधिकरण महानस आदि से भिन्न तप्त अयोगोलक [वर्तमान समयें रसोई गेस] निरूपित वृत्तित्व के होने से धूमवदन्यनिरूपित वृत्तित्व का अभाव के न रहने के कारण वह्नि हेतु में धूम निरूपित व्याप्ति के लक्षण का अतिप्रसङ्ग भी नहीं है।

### माथुरी

**तादृशवृत्तित्वाभावश्च तादृशवृत्तित्वसामान्याभावो**

---

व्यक्ति से भेद युक्त का बोध होता है मानने से पीला घट से भिन्न होने से नील घट का भी बोध होना चाहिए था। किन्तु ऐसा बोध किसी को नहीं होता, अतः "घटान्य" इसका अर्थ घटत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक भेद है। इसी प्रकार "साध्यवदन्यावृत्तित्वम्" इस लक्षण का भी अन्य पद के सामर्थ्य से "साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभावनिरूपितवृत्तित्वाभाव अर्थ निकलता है। इस से "वहिमान् धूमान्" इत्यादि नानाधिकरणक साध्यक सद्धेतु में अव्याप्ति नहीं है। तथा "एतद्रूपवान् एतद्सात्" इत्यादि एकव्यक्तिसाध्यक सद्धेतु में भी अव्याप्ति नहीं होगी। दीधिति के टीकाग्रन्थों में गादाधरी, जागदीशी में "नीलो घटो घटान्यः" इस उदाहरण के बारे में विशेष चर्चा उपलब्ध है।

**बोध्यः। तेन धूमवान् वह्नेरित्यादौ धूमवदन्यजलह्रदादिवृत्ति-त्वाभावस्य धूमवदन्यवृत्तित्वजलत्वोभयाभावस्य च हेतौ सत्वेऽपि नातिव्याप्तिः।**

यहाँ साध्यवदन्यनिरूपित वृत्तित्वाभाव का अर्थ वृत्तित्वसामान्याभाव कहना पड़ेगा। क्योंकि "साध्यवदन्यनिरूपित वृत्तित्व के अभाव को ही व्याप्ति मानने पर "धूमवान् वह्नेः" इस स्थल में भी वह्नि हेतु में धूमवदन्य जलाशयादिनिरूपित वृत्तित्व का अभाव होने से वह्नि में धूमव्याप्ति लक्षण की अतिव्याप्ति होगी, और[२] इसी स्थल में धूमवदन्य तप्साय:पिण्ड निरूपित वृत्तित्व जलत्व उभयत्वावच्छिन्नाभाव लेकर उभयाभावीय प्रतियोगिता वह्नि में होने के कारण भी अतिव्याप्ति होगी। आशय यह है कि–"यस्य अभावः स प्रतियोगी" (जिसका अभाव लेंगे वह उस अभाव का प्रतियोगी होगा, जैसे घटाभाव का प्रतियोगी घट) इस नियम से साध्यवदन्य निरूपित वृत्त्यभाव का मतलब साध्यवदन्य-निरूपितवृत्तिप्रतियोगिक अभाव है। तब धूमवदन्यनिरूपित वृत्ति जलोभयाभाव भी साध्यवदन्यनिरूपित वृत्ति प्रतियोगिक अभाव है; क्योंकि "एकसत्वेऽपि द्वयं नास्ति–एक के रहने पर भी दोनों नहीं हैं" इस प्रतीति से सिद्ध होता

---

२. यहाँ मथुरानाथ ने वृत्तित्वसामान्याभाव के विवक्षा न मानने पर दो प्रकार से अतिव्याप्ति दिखाया है। पहले साध्यवदन्यवृत्यभाव इतने मात्र कहने पर "धूमवान् वह्नेः" इस प्रयोग में साध्य धूम है तद्वदन्य ह्रद, सरोवर आदि है, तन्निरूपित वृत्त्यभाव वह्नि में होने से अतिव्याप्ति होगी। इसके निवारण हेतु साध्यवदन्यनिरूपितवृत्तित्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाव इतने मात्र कहना पर्याप्त है, क्योंकि साध्यवदन्यह्रदनिरूपितवृत्तित्वाभाव लेकर अतिव्याप्ति दी गयी थी। साध्यवदन्यनिरूपितवृत्तित्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाव के विवक्षा मानने पर साध्यवदन्यायोगोलक निरूपितवृत्तित्वाभाव वह्नि में न होने से अतिव्याप्ति नहीं है। किन्तु इतने ही कहने से धूमवदन्यवृत्तित्वजलत्वोभयाभाव लेकर पुनः इसी स्थल में अतिव्याप्ति होगी। अतः वृत्तित्वसामान्याभाव पद से वृत्तितात्वेतरधर्मान-वच्छिन्नवृत्तितात्वावच्छिन्न प्रतियोगिताकाभाव की विवक्षा मानना पड़ेगा। इसको बताने के लिए ही श्री मथुरानाथ वृत्तित्वसामान्याभाव के विवक्षा न मानने पर दो प्रकार से अतिव्याप्ति दिखाया है। इसका भी अपेक्षित परिष्कार आगे अनुवाद में स्पष्ट किया गया है।

है कि उभयाभाव का विरोध उभय प्रतियोगी के साथ ही होता है केवल एक प्रतियोगी के साथ नहीं होता है, अतः तप्तायःपिण्ड में वह्नि के होने पर भी जल के अभाव से धूमवदन्य तप्तायःपिण्ड में वह्निजलोभयं नास्ति यह अभाव लिया जा सकता है। उस उभयाभाव का प्रतियोगी वह्नि भी है। अतः धूमवदन्यनिरूपितवृत्ति- प्रतियोगिक अभाव वह्नि में होने से व्याप्ति लक्षण की अतिव्याप्ति होगी। अतः अतिव्याप्ति वारण हेतु प्रथम लक्षण के समान वृत्तित्वसामान्याभाव कहना पड़ेगा। इसका अर्थ है कि–साध्यवदन्यत्वनिष्ठ अवच्छेदकता से भिन्न अवच्छेदकता से अनिरूपित जो साध्यवदन्यनिष्ठ अवच्छेदकता उससे भिन्न एवं वृत्तित्वनिष्ठ अवच्छेदकता से भिन्न अवच्छेदकता से अनिरूपित जो साध्यवदन्य निरूपित वृत्तिनिष्ठ प्रतियोगिता, तादृश प्रतियोगिता का निरूपक अभाव। आशय यह है कि–"घटो नास्ति-घट नहीं है" यह सामान्याभाव है, "नीलघटो नास्ति- नील घट नहीं है" यह विशेषाभाव है, इसी तरह "धूमवदन्यनिरूपितवृत्तित्वं नास्ति" यह सामान्याभाव है, अर्थात् वृत्तितात्वेतर-धर्मानवच्छिन्नवृत्तितात्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाव वृत्तितात्व से भिन्न धर्म से अनवच्छिन्न और वृत्तितात्व से अवच्छिन्न प्रतियोगिताक अभाव। धूमवदन्यजलह्रदादि वृत्तित्वाभाव=धूमवदन्य जलाशय निरूपित वृत्तित्वं नास्ति यह विशेषाभाव है क्योंकि इस अभाव का प्रतियोगी धूमवदन्यजलह्रदादिनिरूपितवृत्तित्व है उसमें विद्यमान प्रतियोगिता की अवच्छेदकता वृत्तितात्व और धूमवदन्य अधिकरण जलह्रदादि में है, धूमवदन्य जलह्रदादि में जो प्रतियोगितावच्छेदकता है उसके दो अवच्छेदक हैं धूमवदन्यत्व एवं जलह्रदत्व। इसलिए वह प्रतियोगितावच्छेदकता साध्यवदन्यत्वनिष्ठ अवच्छेदकता से भिन्न जलह्रदत्वनिष्ठ अवच्छेदकता से निरूपित होने के कारण अवच्छेदकता साध्यवदन्यत्वनिष्ठ अवच्छेदकता से भिन्न जलह्रदत्वनिष्ठ अवच्छेदकता से भिन्न अवच्छेदकता से अनिरूपित नहीं है। अतः उक्त वृत्तित्व सामान्याभाव को व्याप्ति मानने पर उक्त स्थल में अतिव्याप्ति नहीं है। इसी प्रकार धूमवदन्यवृत्तित्वजलत्वोभयाभाव लेने पर भी उभयाभाव की प्रतियोगिता वृत्तित्व, जलत्व उभयत्व तीनों में

होने के कारण वह प्रतियोगितावच्छेदकता साध्यवदन्यत्वनिष्ठावच्छेदकता से भिन्न अवच्छेदकता से अनिरूपित नहीं है। अतः वृत्तित्व सामान्याभाव को लक्षण में विवक्षित मानने पर उक्त स्थल में अतिव्याप्ति नहीं होगी।

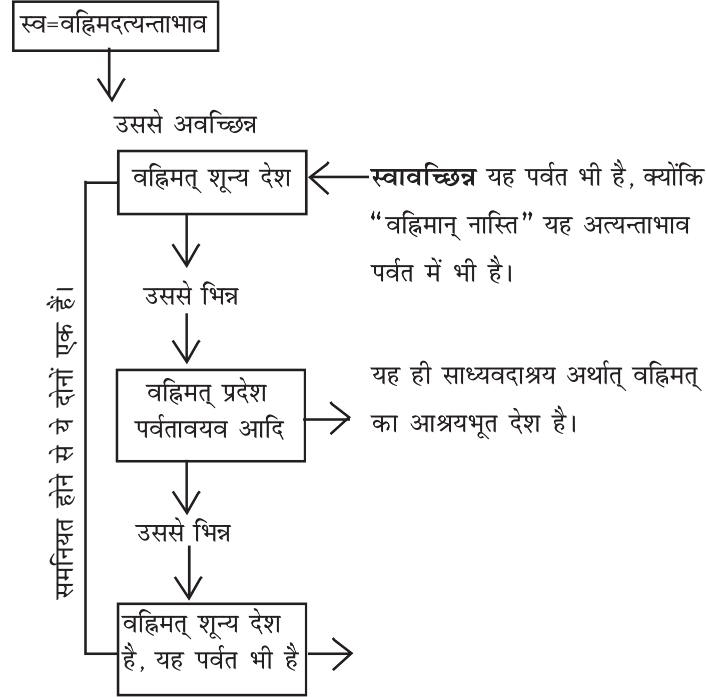
यहाँ यह विचार करना अनुपयुक्त न होगा कि–माथुरीकार ने केवल वृत्तित्व सामान्याभाव अर्थात् धूमवदन्यनिरूपितवृत्तित्वं नास्ति इस प्रतीतिसिद्ध अभाव को ही इङ्गित किया उसका उक्त व्यापक अर्थ मानने का क्या जरूरी है। इसका यह उत्तर है कि–जैसे घटसामान्याभाव कहने से घटत्वेतरधर्मानवच्छिन्नघटत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाव अभिप्रेत होता है वैसे ही वृत्तित्वसामान्याभाव कहने से वृत्तितात्वेतरधर्मानवच्छिन्नवृत्ति–तात्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाव अभिप्रेत है ऐसे मानने से "वह्निमान् धूमाद्" इत्यादि सद्धेतु में लक्षण का समन्वय न हो पायेगा क्योंकि वह्निमदन्यनिरूपितवृत्त्यभावीयप्रतियोगितानिरूपितत्व सम्बन्ध से वह्निमदन्य–निष्ठावच्छेदकता से अर्थात् वृत्तितात्वेतर धर्म से अवच्छिन्न होने से वृत्तितात्वेतरधर्मानवच्छिन्न प्रतियोगिताकाभाव अप्रसिद्ध होगा, अतः साध्यवदन्यत्वनिष्ठ अवच्छेदकता से भिन्न अवच्छेदकता से अनिरूपित इत्यादि अर्थ कहना पड़ेगा। वृत्तित्वाभाव के विश्लेषण के बाद साध्यवदन्यत्व की व्याख्या करते हैं कि–प्रकृत लक्षण में साध्यवदन्यत्व का अर्थ अन्योन्याभावत्व से निरूपित जो साध्यत्वावच्छिन्न प्रतियोगिता तादृश प्रतियोगिता निरूपक अभाव है। इसमें साध्यवत्वावच्छिन्न प्रतियोगिताक न कहने से "वह्निमान् धूमाद्" इत्यादि स्थल में अव्याप्ति होगी, क्योंकि महानसीय वह्नि महानस में ही है, और पर्वतीय वह्नि पर्वत में ही है यह सर्व विदित है, अतः पर्वत में महानसीय वह्निमान् नास्ति यह भेद ले सकते हैं। अतः साध्यवदन्य पर्वत होगा, तन्निरूपित वृत्तित्व ही धूम में है। इस अव्याप्ति के निवारण हेतु साध्यवत्त्वावच्छिन्न प्रतियोगिता का भेद निवेश आवश्यक है, अब जैसे जहाँ पीत घट है वहाँ "नीलघटवान् नास्ति" यह भेद है किन्तु "घटवान् न" यह भेद नहीं है वैसे ही पर्वत में "महानसीय वह्निमान् न" यह भेद है किन्तु "वह्निमान् न" यह भेद नहीं है। यह "वह्निमान् न" यह भेद ही वह्निमत्वावच्छिन्न प्रतियोगिताक

है, "महानसीय वह्निमान् न" यह भेद महानसीयवह्निमत्वावच्छिन्न प्रतियोगिताक है। अतः प्रकृत लक्षण में साध्यवत्त्वावच्छिन्नत्व के विवक्षा मानने पर पर्वत में वह्निमत्वावच्छिन्न प्रतियोगिताक भेद न होने से साध्यवत्वावच्छिन्न प्रतियोगिताक भेद वाले ह्रदादि निरूपित वृत्तित्व धूम में नहीं होने से लक्षण का समन्वय हो जायेगा।

**माथुरी**

**साध्यवदन्यत्वञ्च अन्योन्याभावत्वनिरूपित-साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाववत्त्वम्, तेन वह्निमान् धूमाद् इत्यादौ तत्तद्वह्निमदन्यस्मिन् धूमादेर्वृत्तावपि नाव्याप्तिः। न वा वहिमत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकात्यन्ताभावस्य स्वावच्छिन्नभिन्नभेदरूपस्याधिकरणे पर्वतादौ धूमस्य वृत्तावप्यव्याप्तिः, तस्य साध्यवत्वावच्छिन्नप्रतियोगितायाः अत्यन्ताभावत्वनिरूपितत्वेन अन्योन्याभावत्वनिरूपितत्वविरहात्। अन्योन्याभावत्वनिरूपितत्वञ्च तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नत्वमेव।**

**"साध्यवदन्यत्व" अन्योन्याभाव** से निरूपित होना चाहिए यह कहना भी अनिवार्य है। क्योंकि अन्योन्यभाव तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिताक अभाव है। पर्वत में वह्नि है, इसलिए वहाँ "वह्निमान् न" यह भेद अर्थात् तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिताक अभाव असम्भव है। किन्तु "वह्निमान् नास्ति" यह अत्यन्ताभाव है, जैसे घट में तद्घट का अत्यन्ताभाव है किन्तु तद्घट भेद नहीं है घटान्तर का भेद है। अब प्रकृत लक्षण में साध्यवदन्यत्व अन्योन्याभाव से निरूपित होना चाहिए ऐसे न कहने पर पर्वत में "वह्निमान् नास्ति" यह जो अत्यन्ताभाव है वह "स्वावच्छिन्न भिन्न भेद रूप होने के कारण वह्निमत् पर्वतादि भी साध्यवदन्य हो जायेंगे, तन्निरूपित वृत्तित्व ही धूम में है अतः अव्याप्ति होगी। "वह्निमान् नास्ति" यह अत्यन्ताभाव स्वावच्छिन्न भिन्न भेद रूप कैसे यह इस प्रकार चित्र माध्यम से समझ सकते हैं–




यद्यपि साक्षात् साध्यवदन्य साध्यवत् पर्वत नहीं हो सकता है तथापि लाघवात् साध्यवत् पर्वत भी साध्यवदत्यन्ताभावावच्छिन्न भिन्नभेदरूप होने से साध्यवदन्य मान सकते हैं। तब तन्निरूपित वृत्तित्व ही धूम में है, अतः अव्याप्ति होगी, अर्थात् यहाँ वह्निमदत्यन्ताभाव के भेदस्वरूप होने से वह्निमत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक अन्योन्याभाव शब्द से वह्निमदत्यन्ताभाव को लेकर अव्याप्ति सम्भव है। इस अव्याप्ति वारण हेतु साध्यवदन्यत्व अन्योन्याभावत्व से निरूपित होना चाहिए। यह विवक्षित है, अन्योन्याभावत्व निरूपित माने तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिताक है। वह्निमत् पर्वत में साध्यवत्त्वावच्छिन्न तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिताक अन्योन्याभाव नहीं है, स्वावच्छिन्नभिन्न भेद स्वावच्छिन्नभिन्ननिष्ठप्रतियोगिताक है अर्थात् वह साध्यवदभाववद्भेद से अवच्छिन्न है अतः साध्यवत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक अत्यन्ताभाव को लेकर अव्याप्ति नहीं दे सकते। अब साध्यवदन्य-

निरूपितवृत्तित्वाभावो व्याप्ति इस लक्षण के "वृत्तित्वाभाव" साध्यवदन्यत्त्व के चर्चा के बाद साध्यवदन्यत्व कुक्षिनिविष्ट "साध्यवत्त्व" की व्याख्या करते हैं कि–साध्यवत्त्व साध्यतावच्छेदक सम्बन्ध से विवक्षित है, अन्यथा "पर्वतो वह्निमान्" इत्यादि स्थल में साध्य वह्नि, साध्यवत् समवाय सम्बन्ध से वह्न्यवयव वह्नि के अवयव है तदन्य पर्वत है तन्निरूपित वृत्तित्व ही धूम में है, अतः अव्याप्ति होगी। साध्यतावच्छेक सम्बन्ध के विवक्षा मानने से अव्याप्ति नहीं होगी, क्योंकि–पक्ष में जिस सम्बन्ध से साध्य सिद्धि अपेक्षित है वह साध्यतावच्छेक सम्बन्ध कहा जात है "येन सम्बन्धेन साध्यं सिसाधयिषितं स सम्बन्धः साध्यतावच्छेकसम्बन्धः", इसलिए पर्वत में वह्नि की सिद्धि संयोगसम्बन्ध से इष्ट है, अतः साध्यतावच्छेदकसम्बन्ध संयोगसम्बन्ध है, संयोगसम्बन्ध से साध्यवत् पर्वत ही है, पर्वतावयव नहीं है, अतः साध्यतावच्छेदक से साध्यवत्त्व की विवक्षा मानने पर साध्यवदन्य ह्रदादि ही होंगे, तन्निरूपित वृत्तित्व धूम में नहीं है, अतः अव्याप्ति नहीं है।

**माथुरी**

**साध्यवत्त्वञ्च साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन बोध्यम्। तेन वह्निमान् धूमादित्यादौ वह्निमत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्य समवायेन वह्निमतोऽन्योन्याभावस्याधिकरणे पर्वतादौ धूमादेर्वृत्तावपि नाव्याप्तिः।**

इस प्रकार श्री मथुरानाथ जी ने "साध्यवदन्यावृत्तित्व रूप" पञ्चमलक्षण में निविष्ट सभी पदों के व्याख्या के बाद अन्य सब बातें प्रथम लक्षण में कही गयी रीति से ही समझने का निर्देश किया। प्रथम लक्षण में जो "सत्तावान् जातेः", "गुणत्ववान् ज्ञानत्वात्" इत्यादि स्थलों में अव्याप्यत्व, विषयित्व आदि सम्बन्ध से साध्याभाव के अधिकरण में जाति, ज्ञानत्व की वृत्ति होने से अव्याप्ति दोष दी गयी थी। उसकी प्रसक्ति यहाँ भी हो सकती है, अतः इस लक्षण में भी अन्य सब बातें जैसे साध्यवदन्यत्व की अधिकरणता, साध्यवदन्यनिरूपितवृत्ति एवं वृत्ति का अभाव आदि प्रथम लक्षण के व्याख्या के समय कही गयी रीति से इस लक्षण में भी निवेश से उक्त अव्याप्ति नहीं होगी। अब जो प्रश्न

है "साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावासामानाधिकरण्यम्, और साध्यवदन्या-वृत्तित्वम्" इन दोनों लक्षणों में अभेद क्यों नहीं? इसका समाधान भी तृतीय लक्षण के व्याख्या के समय में ही किया गया कहके ग्रन्थकार ने पञ्चम लक्षण के व्याख्या का उपसंहार किया है। तृतीय एवं पञ्चम लक्षण में यही अन्तर है कि–तृतीय लक्षण में साध्यवद्भेदाधिकरण का निवेश साध्यवद्भेदाधिकरणत्व रूप में है प्रकृत पञ्चम लक्षण में साध्यवद्भिन्नत्व रूप से निवेश है। अतः प्रतियोगितावच्छेदककोटि में अधिकरणत्व का प्रवेश तृतीय लक्षण में, प्रकृत लक्षण में अधिकरणत्व का निवेश नहीं है। यही अन्तर है। व्याप्ति के तृतीय लक्षण "साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्या-भावासामानाधिकरण्यम्" है। यहाँ आपाततः प्रतीत अर्थ को मानने से साध्य का अधिकरण पर्वत है, उसका भेद महानस में है, वहाँ महानस में धूम है, अतः साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभाव का सामानाधिकरण्य धूम में होने से अव्याप्ति होगी। इस अव्याप्ति निवारण हेतु श्री मथुरानाथ ने साध्यवत्वावच्छिन्न प्रतियोगिताकान्योन्याभाव घटित लक्षण में इसका तात्पर्य स्वीकार किया है। श्री दीधितिकार ने "हेतोः साध्यवत्पक्षभिन्नदृष्टान्त-वृत्तित्वेनाव्याप्तेराह-सकलेति।" इस वाक्य से इसी अव्याप्ति को आलक्ष्य करके श्रीमणिकार ने लक्षणान्तर के ओर अनुधावन किया ऐसे माना है। इसलिए दीधिति के अनुसार तृतीय एवं पञ्चम लक्षणों में अभेद का प्रसङ्ग नहीं है।

### माथुरी

**सर्वमन्यत् प्रथमलक्षणोक्तदिशाऽवसेयम्। यथा चास्य न तृतीयलक्षणाभेदस्तथोक्तं तत्रैवेति समासः।**

श्री मथुरानाथ ने "साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्यभाव तृतीय लक्षण में विवक्षित है ऐसे मानकर तृतीय एव पञ्चम लक्षणों में अभेद प्रसङ्ग का वारण किया है। और एक बात यह विचारणीय है कि–"साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभाव न मानने पर केवलान्वयि साध्यक अव्याप्ति भी नहीं होगी, क्योंकि घट नहीं, पट नहीं इस प्रकार "वाच्यं ज्ञेयत्वात्" इस अनुमान में भी साध्य के अधिकरणीभूत उस व्यक्तित्व से अवच्छिन्न प्रतियोगिताक अन्योन्याभाव प्रसिद्ध होने अव्याप्ति

नहीं होगी, तब "चिन्तामणि ग्रन्थ के पाँचों लक्षणों का दोष प्रतिपादक "केवलान्वयिन्यभावात्" प्रसङ्ग असङ्गत हो जायगा। अतः अग्रिम अव्याप्ति दोष को ध्यान में रखकर तृतीय लक्षण में साध्यवत्वावच्छिन्नप्रतियोगिता-कान्योन्याभाव विवक्षित मानना ही पड़ेगा। तब "साध्यवत्त्वावच्छिन्न-प्रतियोगिताकान्योन्याभाववन्निरूपितवृत्त्यभाव रूप पञ्चम लक्षण से अभेद प्रसक्त होगा। इसका निवारण मूल चिन्तामणि ग्रन्थ में ही तृतीय लक्षण में "साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावासामानाधिकरण्यम् "इसमें अधिकरण पद से किया गया है। तृतीय लक्षण में व्याप्ति के शरीर में अधिकरण का प्रवेश होने से लक्षण का स्वरूप इस प्रकार होगा कि–साध्यवत्त्वावच्छिन्न प्रतियोगिताकान्योन्याभावनिरूपिताधिकरणत्वनिष्ठावच्छेदकताभिन्नावच्छेदक-ताऽनिरूपितनिरूपितत्वसम्बन्धावच्छिन्नावच्छेदकतानिरूपितवृत्तिनिष्ठ-प्रतियोगिताकाभावः। यहाँ इस लक्षण में साध्यवद्भेदाधिकरणत्व का प्रवेश है अतः अधिकरणत्वनिष्ठावच्छेदकता से भिन्न अवच्छेदकता से अनिरूपित होना अभाव को अनिवार्य है। पञ्चम लक्षण में "साध्यवद्भिन्न-त्वेन" प्रवेश होने से लक्षण का स्वरूप–"साध्यवत्वावच्छिन्नप्रतियोगिता-कान्योन्याभाववन्निरूपितवृत्त्यभावः है। अतः साध्यवत्वावच्छिन्नप्रतियोगिता-कान्योन्याभाववान् में जो इस अभाव की प्रतियोगितावच्छेदकता है वह साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्या-भावनिरूपिताधिकरणत्वनिष्ठावच्छेदकता से भिन्न साध्यवत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभावनिष्ठस्वरूपसम्बन्ध-वच्छिन्नावच्छेदकता से निरूपित ही है। इसलिए साध्यवत्वावच्छिन्नप्रतियोगिता-कान्योन्याभावन्निरूपितवृत्त्यभाव में साध्यवत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्या-भावाधिकरणनिरूपितवृत्यभावत्व नहीं है, अतः तृतीय एवं पञ्चम लक्षणों में भेद स्पष्ट है।

### माथुरी

**सर्वाण्येव लक्षणानि केवलान्वय्यव्याप्त्या दूषयति-केवलान्वयिन्यभावादिति। पञ्चानामेव लक्षणानाम्-इदं वाच्यं ज्ञेयत्वादित्यादिव्याप्यवृत्तिकेवलान्वयिसाध्यके।**

अब यहाँ प्रश्न उदित होता है कि–इस प्रकार तृतीय एवं पञ्चम लक्षण में अधिकरणत्व प्रवेश अप्रवेश से पुनरुक्ति या अभेद दोष का

परिहार होने पर भी तृतीय लक्षण में अधिकरणत्व प्रवेश से व्यर्थविशेषण घटितत्व दोष क्यों नहीं है, जैसे "पर्वतो वह्निमान् नीलधूमात्" इस अनुमान में नील पद व्यर्थ है इसी प्रकार तृतीय लक्षण में भी व्यर्थविशेषणत्व दोषा की सम्भावना है, दृष्टान्त में जैसे नील धूम हेतु है वैसे लक्षण भी व्याप्ति का स्वेतरभेद के अनुमापक लिङ्ग है।

इस प्रश्न का समाधान यह है कि–व्यर्थविशेषण उसको माना जाता है जो स्वसमानाधिकरण प्रकृतसाध्यव्याप्यतावच्छेदक धर्म से भिन्न धर्म युक्त है। प्रकृत में साध्यवत्वावच्छिन्न प्रतियोगिताक अन्योन्याभाववन्निरूपित वृत्त्यभावत्व (पञ्चम लक्षणन) के साध्यवत्वावच्छिन्न-प्रतियोगिताक अन्योन्याभावाधिकरणनिरूपित वृत्त्यभावत्व (तृतीय लक्षण का) का समानाधिकरण्य न होने से तृतीय लक्षण में स्वसमानाधिकरण प्रकृतसाध्यव्याप्यतावच्छेदक धर्मान्तरघटितत्व रूप व्यर्थविशेषण घटितत्व नहीं है।

अब श्री मथुरानाथ जी "केवलान्वयिन्यभावात्" इस पङ्क्ति का विवेचन प्रस्तुत करते हैं कि–तत्त्वचिन्तामणिकार ने व्याप्ति के इन पाँच लक्षणों को केवलान्वयि साध्यक "इदं वाच्यं ज्ञेयत्वात्" अनुमान में अव्याप्ति दोष बताया। माथुरीकार ने यह दोष पाँच लक्षणों का सामान्य दोष है, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ पञ्चम लक्षणों का सामान्य दोष है, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम इन चार लक्षणों में "कपिसंयोगाभाववान् सत्वात्" इत्यादि अव्याप्यवृत्ति केवलान्वयि साध्यक में भी अव्याप्ति दोष है। न्याय दर्शन अन्वय व्यतिरेक, केवलान्वयि और केवलव्यतिरेक तीन प्रकार के अनुमान स्वीकार करता है। जिस साध्य का सपक्ष विपक्ष दोनों प्रसिद्ध है, उस साध्य के अनुमान अन्वयव्यतिरेक कहा गया, सपक्ष का मतलब साध्य के निश्चय जहाँ हो वह प्रदेश, जैसे "वह्निमान् धूमात्" प्रयोग में महानस है। विपक्ष का मतलब साध्य के अभाव का निश्चय जहाँ हो वह प्रदेश, जैसे वह्निमान् धूमात् प्रयोग में ह्रदादि हैं। जिस साध्य के अभाव का अधिकरण अप्रसिद्ध है उस साध्य के अनुमान केवलान्वयि अनुमान है। जिस साध्य का सपक्ष अप्रसिद्ध है वह केवलव्यतिरेकि अनुमान है। "इदं वाच्यं ज्ञेयत्वात्" अर्थात् यह ज्ञान के विषय होने से

वाच्य है" यह अनुमान कवेलान्वयि है, क्योंकि न्यायदर्शन अवाच्य पदार्थ को नहीं स्वीकार करता है। अतः वाच्यत्व के अभाव का अधिकरण अप्रसिद्ध है। अतः साध्य के अभाव या साध्यवद्भेद घटित सब पाँचों लक्षण अव्याप्ति दोष से युक्त है। इसी को माथुरीकार ने स्पष्ट किया कि–साध्यतावच्छेदक सम्बन्ध से साध्यतावच्छेदक धर्मावच्छिन्न-प्रतियोगिताक अभाव प्रथम, द्वितीय एवं चतुर्थ लक्षण में निविष्ट है, प्रकृत केवलान्वयि स्थल में साध्यतावच्छेदक स्वरूप सम्बन्ध से वाच्यत्वाभाव अप्रसिद्ध है। एवं व्याप्ति के द्वितीय, तृतीय, पञ्चम, लक्षण में साध्यतावच्छेदक सम्बन्ध से साध्यवत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक अन्योन्याभाव निविष्ट होने से उक्त केवलान्वयि प्रयोग में साध्यतावच्छेदक स्वरूप सम्बन्ध से साध्यवत्त्वावच्छिन्न प्रतियोगिताक साध्यवद् भेद अप्रसिद्ध होने के कारण अव्याप्ति है। और "कपिसंयोगाभाववान् सत्वात्" इस स्थल में "कपिसंयोगाभाव" अव्याप्यवृत्ति केवलान्वयि होने से साध्य के अभाव कपि संयोग के रूप होने से संयोग सब जगह सावच्छिन्न होने के कारण निरवच्छिन्न साध्याभाव का अधिकरण अप्रसिद्ध है, अतः द्वितीय से लेकर पञ्चम तक चार लक्षणों में अव्याप्ति है। प्रथम लक्षण में अर्थात् साध्याभाववदवृत्तित्व लक्षण की अव्याप्ति उक्त स्थल कपिसंयोगाभाववान् सत्वात् में नहीं है क्योंकि प्रथम लक्षण का परिष्कार हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न इत्यादि रूप से किया जा चुका है। तृतीय लक्षण का केवलान्वयिसाध्यकस्थल में असत्व के बारे में तृतीय लक्षण के व्याख्यान अवसर में ही बताया जा चुका है।

### माथुरी

**द्वितीयादिलक्षणचतुष्टयस्य तु कपिसंयोगाभाववान् सत्त्वादित्याद्यव्याप्यवृत्तिकेवलान्वयिसाध्यकेऽपि चाभावादि-त्यर्थः। साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यतावच्छेद-कावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभावस्य साध्यतावच्छेदक-सम्बन्धेन साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभावस्य चाप्रसिद्धत्वात्, कपिसंयोगाभाववान् सत्त्वादित्यादौ**

**निरवच्छिन्नसाध्याभावाधिकरणत्वस्याप्रसिद्धत्वाच्चेति भावः।**

अब माथुरीकार कहते हैं यह दोष प्रदर्शन केवल उपलक्षण है, अर्थात् इसके अतिरिक्त भी दोष हैं। द्वितीय लक्षण में "कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात्" इत्यादि स्थल में भी अव्याप्ति है। क्योंकि अधिकरण भेद से अभाव भेद मानने में कोई प्रमाण नहीं है। फलतः कपिसंयोग के अधिकरण से भिन्न स्थल में अर्थात् गुणादि में जो कपिसंयोगाभाव है, उसका अधिकरण एतद्वृक्ष होगा उसमें एतद्वृक्षत्व होने से अव्याप्ति स्पष्ट है। यदि कहे कि "साध्यवद्भिन्नवृत्तित्वविशिष्टसाध्याभाववदवृत्तित्वं व्याप्ति विवक्षित है, ऐसे मानने पर उक्त विशिष्ट साध्याभावाधिकरण गुणादि ही होंगे न कि एतद्वृक्ष है, क्योंकि एतद्वृक्ष में कपिसंयोगाभाव विद्यमान होने पर भी वह संयोगाभाव कपिसंयोगवद्भिन्नवृत्तित्व विशिष्ट न ही है, अतः तादृश वृत्तित्वाभाव गुणादि में है। वहाँ एतद्वृक्षत्व नहीं है, इसलिए अव्याप्ति नहीं है। यह ठीक नहीं है–क्योंकि ऐसे विवक्षा मानने से साध्याभाव पद व्यर्थ हो जायेगा, "साध्यवद्भिन्नवृत्तित्वविशिष्टवदवृत्तित्व" मात्र को ही व्याप्ति मानने पर साध्यवद्भिन्नवृत्तित्वविशिष्ट शब्द से जो कोई भी लिया जायेगा उसका अधिकरण साध्यवद्भिन्न ही होगा, अतः सद्धेतु में लक्षण समन्वय हो जायेगा। एवं व्याप्ति के तृतीय लक्षण में "वह्निमान् धूमाद्" इत्यादि नानाधिकरणक साध्यक अनुमान में अव्याप्ति होगी। क्योंकि तृतीय लक्षण में साध्यवत् प्रतियोगिक अन्योन्याभाव का ही निवेश इष्ट है, अन्यथा साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकसामान्य भेद मानने पर पञ्चम लक्षण की पुनरुक्ति हो जायेगी। तब साध्यवन् महानस है, तत्प्रतियोगिक भेदः पर्वत में है, वहाँ धूम है अतः साध्यवत्प्रतियोगि-कान्योन्याभावसामानाधिकरण्य ही है, इसलिए अव्याप्ति है।

इस प्रकार श्रीमथुरानाथ जी ने पञ्चम लक्षण के व्याख्यान के साथ इन पाँचों लक्षणों के दोषों का भी वर्णन किया है।

श्री रघुनाथ शिरोमणि जी ने दीधिति ग्रन्थ में क्रमशः हर एक लक्षण के दोष निरूपण करते हुए अग्रिम लक्षण प्रणयन कारण दर्शाया है। वह इस प्रकार है–साध्याभाववदवृत्तित्वं व्याप्ति यह पहला लक्षण है, इस लक्षण का दोष है कि–"कपिसंयोगी एतत्त्वाद्" इत्यादि

अव्याप्यवृत्तिसाध्यकसद्धेतु में अव्याप्ति है। आशय यह है कि–संयोग एक अव्याप्यवृत्ति पदार्थ है अर्थात् जहाँ वृक्षादि में शाखादि अवच्छेदेन कपिसंयोग है वहाँ ही मूलावच्छेदेन कपिसंयोग का अभाव है, इसलिए साध्याभाववद् वृत्तित्व ही एतत्त्व में है, अतः अव्याप्ति है। एतद् वारण हेतु "साध्यवद् भिन्ने यः साध्याभावः तद्वदवृत्तित्वम्" यह द्वितीय लक्षण प्रवृत्त है। इस लक्षण में पूर्वोक्त अव्याप्ति नहीं है, क्योंकि–वृक्ष में साध्य कपिसंयोग है, अतः वृक्ष साध्यवद्भिन्नसाध्याभाववाला नहीं है, किन्तु गुणादि हि साध्यवद्भिन्नसाध्याभाव वाले हैं, तन्निरूपित वृत्तित्व एतत्त्व में नहीं है, इसलिए अव्याप्ति नहीं है।

**माथुरी**

**केवलान्वयिसाध्यकासत्त्वञ्च तद्व्याख्यानावसरे एव प्रपञ्चितम्।**

**एतच्चोपलक्षणम्, द्वितीये कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वादित्यादावप्यव्याप्तिः, अधिकरणभेदेन अभावभेदे मानाभावेन कपिसंयोगवद् भिन्नवृत्तिकपिसंयोगाभाववति वृक्षे एतद्वृक्षत्वस्य वृत्तित्वात्। न च साध्यवद्भिन्नवृत्तित्वविशिष्टसाध्याभाववदवृत्तित्वं वक्तव्यम्, एवञ्च वृक्षस्य विशिष्टाधिकरणत्वाभावान्नाव्याप्तिरिति वाच्यम्, साध्याभावपदवैय्यर्थ्यापत्तेः। साध्यवद्भिन्नवृत्तित्वविशिष्टवदवृत्तित्वस्यैव सम्यक्त्वात्। सद्धेतौ हेत्वधिकरणे विशिष्टाधिकरणत्वाभावादेवासम्भवाभावात्।**

**तृतीये साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावमात्रस्य घटकत्वे चालनीयन्यायेन अन्योन्याभावमादाय नानाधिकरणकसाध्यकवह्निमान् धूमादित्यादावव्याप्तिश्चेत्यपि बोध्यम्।**

द्वितीय लक्षण का दोष है कि–अधिकरण भेद से अभाव भेद मानने पर वृक्षवृत्ति संयोगाभाव और गुणादि वृत्ति संयोगाभाव दोनों भिन्न होने से "कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात्" यहाँ अव्याप्ति नहीं है, किन्तु

अधिकरण भेदेन अभाव भेद में प्रमाण न होने से वृक्ष में जो संयोगाभव है वह ही संयोगाभाव गुण आदि में है, अतः अव्याप्ति पूर्ववत् ही है। इसलिए तृतीय लक्षण में प्रवृत्ति है– "साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्या-भावासामानाधिकरण्यम्" यह तृतीय लक्षण है। यह लक्षणभेद घटित होने से पूर्वोक्त स्थल "कपिसंयोगी एतत्त्वात्" यहाँ कपिसंयोगी न "यह भेद एतद् वृक्ष में नहीं है, अतः कपिसंयोगवत्प्रतियोगिकान्योन्या-भावासामानाधिकरण्य एतद्वृक्षत्व में है, अतः अव्याप्ति नहीं है। किन्तु इस लक्षण "वह्निमान् धूमात्" इत्यादि प्रसिद्ध सद्धेतुक अनुमान में अव्याप्त है– क्योंकि साध्यवत् पद से महानस लेने से तत्प्रतियोगिक भेद पर्वत में है, अतः तन्निरूपित वृत्तित्व धूम में होने से साध्यवत्प्रतियो-गिकान्योन्याभावसामानाधिकरण्य ही धूम में होने से अव्याप्ति है। यह लक्षण असम्भव दोष ग्रस्त इसलिए नहीं है क्योंकि "एतद् रूपवान् एतद्रसात्" इस स्थल में एक व्यक्ति साध्यक होने से लक्षण समन्वय हो जायेगा। इस अव्याप्ति निवारण हेतु चतुर्थ लक्षण प्रस्तुत है–"सकल साध्याभाववन्निष्ठाभावप्रतियोगित्वम्, यह लक्षण साकल्य घटित है, अतः "वह्निमान् धूमात्" इत्यादि नानाधिकरणक साध्यक अनुमान में अव्याप्ति नहीं है किन्तु "एतद्रूपवान् एतद्सात्" इत्यादि एकव्यक्तिकसाध्यक स्थल में अव्याप्ति होगी। इस अव्याप्तिवारण हेतु सकलपद को छोड़कर पञ्चमलक्षण "साध्यवदन्यावृत्तित्व" रूप लक्षण प्रस्तुत किया गया है। इस लक्षण में पूर्वोक्त स्थल में अव्याप्ति नहीं है किन्तु "वाच्यं ज्ञेयत्वात्" आदि केवलान्वयिसाध्यक स्थल में अव्याप्ति होगी, क्योंकि वाच्यत्ववदन्य अप्रसिद्ध है। इस प्रकार दीधिति ग्रन्थ में पाँचों लक्षणों का अवतरण स्पष्ट रूप से देखने में आता है।

**सिद्धान्तरीतिषु मया भ्रमदूषितेन**<br>
**स्यादन्यथापि लिखितं यदि किञ्चिदत्र।**<br>
**संशोधने गुरुजनाः सदया भवन्तु**<br>
**सच्छास्त्रतत्त्वपरिशीलननिर्विशङ्काः ।।**

**।। इति शम् ।।**

**पञ्चम लक्षण का हिन्दी व्याख्यान सम्पन्न**

*।। पञ्चलक्षणीग्रन्थः सम्पूर्णः।।*

मान्यान् प्रणम्य विहिताञ्जलिरेष भूयो-
भूयो विधाय विनयं विनिवेदयामि।
दूष्यं वचो मम परं निपुणं विभाव्य
भावावबोधविहितो न दुनोति दोषः॥

-श्रीरघुनाथशिरोमणिः

# परिशिष्टम्

नवीननीरदश्यामं मञ्जुमञ्जुललोचनम्।
वल्लरीवल्लभं वन्दे वृन्दावनविहारिणम्॥

–मथुरानाथतर्कवागीशः